Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भगवद्गीता में समत्वयोग

डॉ0 बी0बी0 त्रिपाठी
शोध पर्यवेक्षक, एसोसिएट प्रोफेसर,
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी,
उत्तर प्रदेश,भारत।

मंजीत कुमार वर्मा
शोधार्थी, नेहरू महाविद्यालय ललितपुर,
संबद्ध–बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी,
उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info
Volume 5, Issue 2
Page Number : 27-29
Publication Issue :
March-April-2022
Article History
Accepted : 02 March 2022
Published : 20 March 2022

सारांश– समत्वरूप योग की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि योग ही तो कर्मों में कुशलता है। स्वधर्मरूप कर्म में लगे हुए मनुष्य का जो सिद्धि–असिद्धि में समत्व है, ईश्वरार्पित चित्त है, वही कुशलता है। स्वभाव से ही बन्धन करने वाले जो कर्म है, वे भी समत्वबुद्धि के प्रभाव से अपने स्वभाव का त्याग कर देते है। अतः समत्व बुद्धियुक्त रहना एक सच्ची साधना है।

मुख्य शब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, समत्वयोग, कर्म, स्वधर्म, मनुष्य, बुद्धियोग, संन्यासयोग, ध्यानयोग, योगशास्त्र।

गीता में योग के विभिन्न रूप दिखायी देते हैं, जैसे–ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग ये मुख्य है। तथा बुद्धियोग, संन्यासयोग, ध्यानयोग आदि इसके गौड़ अंग है। यद्यपि सम्पूर्ण गीता को एक दूसरे नाम 'योगशास्त्र' से भी पुकारते हैं क्योकि प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर गीता को योगशास्त्र की संज्ञा दी गयी है।पातंजल योगदर्शन के अनुसार योग का तात्पर्य–

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

योग मन तथा अन्य इन्द्रियों को अपने विषयों में अनायास जाने पर नियन्त्रण रखती है। अर्थात् चित्त के वृत्तियों (व्यापार) पर रोक लगाना ही योग है। किन्तु गीता में इसको 'समत्वं योग उच्यते' के रूप में परिभाषित किया गया है। जिसका तात्पर्य है–सभी परिस्थितियों में समभाव रहना ही योग कहलाता है। गीता में इसे विस्तार से स्पष्ट किया गया है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

इसका मुख्यार्थ इस प्रकार है– हे धनंजय तू आसक्ति को त्यागकर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मो के करो क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है। जो कुछ भी कर्म किया जाय उसके पूर्ण होने और न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम समत्व है।

अहंकार के पूर्णतः समाप्ति के बिना मोक्ष पाना मुश्किल है तथा इसकी निवृत्ति का उपाय मन का समत्व भाव है। इस श्लोक में पहली बार योग शब्द का प्रयोग हुआ है, तथा इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है कि समत्व(समभाव रहना) ही योग कहलाता है। कर्मयोगी के लिए निरन्तर समभाव को दृढ़ करके कर्म करना पड़ता है। और कर्मों के तात्कालिक फलों के प्रति आसक्ति भी नही होनी चाहिए। कर्मों को कुशलतापूर्वक करने के लिए जिस आसक्ति को त्यागने के लिए यहॉ कहा गया है, इन सबका पूर्व श्लोकों में श्रीकृष्ण जी ने संग शब्द से संकेतित किया है। आगे निम्न श्लोक के माध्यम से समत्व योग को समझाया गया है–

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

इसका मुख्यार्थ इस प्रकार है– जय–पराजय लाभ–हानि और सुख–दुःख को समान समझकर उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नही प्राप्त होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि सुखदुःख, लाभ–हानि, हार जीत, जीवन–मरण आदि इन सबमें समान रहना चाहिए, क्योंकि मनुष्य इस लोक में खाली हाथ आता है और परलोक में खाली हाथ ही जाता है। इसलिए इस बीच के मायामोहमय संसार के भ्रमजाल में नही फॅसना चाहिए। इस मृत्युलोक में जब तक जीवन रहता है तब तक मानव जीवन के साथ सुखदुःख, लाभहानि, जय पराजय आदि लगा रहता है।

दूसरों के प्रति समान भाव का उद्भव ही समत्व बुद्धि होना है। राग–द्वेष के कारण ही हम अपने से दूसरों को अलग समझने की गलती करते हैं। ये राग–द्वेष ही काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार को बढ़ाते हैं। अन्य प्रकार से कहे तो इन पांचो दोषों के कारण ही मानव में राग–द्वेष या ईर्ष्या आदि उत्पन्न होते हैं। समत्व की साधना के द्वारा राग–द्वेष जैसे दोषों का नाश होने लगता है। अहंकार का भाव दुर्बल होता जाता है। परिणामस्वरूप दूसरों के प्रति सहज रूप में समत्व भाव, करुणा और संवेदनशीलता की निष्पत्ति होने लगती है। समभाव की उत्पत्ति धार्मिक, नैतिक व राजनीतिक विरोधियों द्वारा भी सम्भव है। वैदिक धर्म मन के परिष्कार पर बल देता है। अपरिष्कृत मन के द्वारा किया गया सदाचरण भी गीता के अनुसार पाखण्ड माना गया है। इसलिए मन के परिष्कार की साधना मानव में समत्व भाव का उदय कर सकेगी।

समत्व बुद्धियुक्त पुरुष की प्रशंसा कर अर्जुन को कर्मयोग के अनुष्ठान की आज्ञा देना तथा समभाव का फल अनामय पद की प्राप्ति बतलाया गया है। जो निम्न है–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है। अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्व रूप योग में लग जा यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता लाता है। अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है।

समत्वबुद्धि से युक्त होकर स्वधर्माचरण करने वाला मनुष्य, जो फल पाता है, समत्वबुद्धि युक्त योग वाला मनुष्य अन्तःकरण शुद्धि तथा ज्ञान प्राप्ति द्वारा सुकृत–दुष्कृत पुण्य–पाप दोनो को यहॉ छोड़ देना है। और इसी लोक में कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। अतः समत्वरूप योग की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि योग ही तो कर्मों में कुशलता है। स्वधर्मरूप कर्म में लगे हुए मनुष्य का जो सिद्धि–असिद्धि में समत्व है, ईश्वरार्पित चित्त है, वही कुशलता है। स्वभाव से ही बन्धन करने वाले जो कर्म है, वे भी समत्वबुद्धि के प्रभाव से अपने स्वभाव का त्याग कर देते है। अतः समत्व बुद्धियुक्त रहना एक सच्ची साधना है।

सन्दर्भ–

1. योगदर्शन (पातंजल दर्शन) सर्वदर्शनसंग्रह प्रकाशन चौखम्भा विद्याभवन चौक वाराणसी 2019
2. श्रीमद्भगवद्गीता श्रीमच्छांकरभाष्याऽऽनन्दगिरिव्याख्यायुता हिन्दी अनुवाद सहिता प्रकाशन–चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान जवाहर नगर दिल्ली 2017
3. श्रीमद्भगवद्गीता जयदयाल गोयन्दका प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर 2016
4. संसार सागर का गीतादीपस्तंभ डा0 श्रीकृष्ण द0 देशमुख चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी 2018
5. यथार्थगीता श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम टस्ट 2018
6. श्रीमद्भगवद्गीता श्रीमधुसूदन सरस्वतीकृत 'गूढार्थदीपिका' संस्कृत टीकायुत हिन्दी व्याख्या विभूषिता प्रकाशक– चौखम्भा संस्कृत भवन 2013